[2011] 13 (अति.) एस.सी.आर. 972

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

बनाम

मदन मोहन प्रसाद एवं अन्य

(2011 की दीवानी अपील वाद संख्या 7630)

05 सितम्बर, 2011

[जे. एम. पंचाल एवं एच. एल. गोखले, न्यायमूर्तिगण]

सेवा विधि – पदोन्नति तथा परिणामी लाभों को प्रदान किया जाना– उत्तरदाता – राज्य न्यायिक सेवा में मुंसिफ, सेवा से निलंबित – तत्पश्चात, रिट याचिकाएँ और विशेष अनुमति याचिकाएँ दायर – निलंबन आदेश तथा विभागीय कार्यवाही वापस ली गई – अधिसूचना जारी कर उत्तरदाता को अपर मुंसिफ (न्यूनतम पद) के रूप में पदस्थापित किया गया – उत्तरदाता द्वारा चुनौती – उसने उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष को निर्देश देने का अनुरोध किया कि उसके कनिष्ठों को जिन तिथियों पर 1970 से 1981 के मध्य पदोन्नति दी गई, उन तिथियों से उसे पदोन्नति दी जाए, सभी वेतन-वृद्धि और अन्य लाभों सहित – तत्पश्चात, उत्तरदाता सेवा से सेवानिवृत्त हुआ – विभिन्न याचिकाएँ तथा प्रतिवेदन दायर – अंततः एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में, खंडपीठ ने अपीलकर्ता–उच्च न्यायालय को उसके प्रशासनिक पक्ष पर, विधि के अनुसार उत्तरदाता के पदोन्नति के प्रकरण तथा परिणामी लाभ पर विचार करने का निर्देश दिया – अपील में, अभिनिर्धारित : पदोन्नति अधिकार का विषय नहीं है, और तो और यह मौलिक अधिकार भी नहीं है, विशेष रूप से जब अधीनस्थ न्यायपालिका में पदोन्नति का विषय उच्च न्यायालय के अधीन है, जिसे अनुच्छेद 235 के अनुसार अधीनस्थ न्यायपालिका पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त है – तथ्यों में, उत्तरदाता सिविल न्यायाधीश पद, तत्पश्चात अपर जिला न्यायाधीश पद और अंततः जिला न्यायाधीश पद की

पदोन्नति का दावा कर रहा था, जब उसके कनिष्ठों को क्रमशः वर्ष 1971, 1974 और 1978 में ऐसे लाभ दिए गए – अभिलेख दर्शाता है कि उत्तरदाता के सेवा-निवृत्त होने तक, वह अपर मुंसिफ के रूप में कार्यरत था और उसे मुंसिफ संवर्ग में कभी पुष्टि नहीं दी गयी – अतः, जब तक वह मुंसिफ पद पर पुष्टि नहीं पा जाता, उसे उच्च पद पर पदोन्नति का दावा विचारणीय नहीं था – पदोन्नति का दावा विलंबित था और उच्च न्यायालय द्वारा विचारणीय नहीं था – उत्तरदाता के जिन कनिष्ठों को पदोन्नति का लाभ दिया गया था, उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया – उनकी अनुपस्थिति में, उत्तरदाता के दावे की जांच नहीं की जा सकती थी – पूर्व में उत्तरदाता ने याचिका दायर कर अपने कनिष्ठों को विभिन्न तिथियों पर प्राप्त लाभों के अनुसार विभिन्न संवर्गों में पूर्व प्रभाव से पदोन्नति तथा सभी दावे, लाभ और वेतन-वृद्धि की मांग की थी, जो खारिज की जा चुकी थी तथा अंतिम रूप से निर्णीत थी और अतः, *पूर्व न्याय निर्णयण* के रूप में बाधक थी – साथ ही उत्तरदाता के सभी अधिकार और दावे उसी समय सुनिश्चित हो गए थे – न तो विशेष अनुमति याचिका के निपटान के समय उत्तरदाता ने कोई अन्य राहत मांगी, न भविष्य में पदोन्नति के लिए राहत मांगने की अनुमति प्राप्त की – अतः, उच्च न्यायालय द्वारा उत्तरदाता के पदोन्नति प्रकरण पर विचार करने हेतु अपीलकर्ता को निर्देश देना त्रुटिपूर्ण था – उच्च न्यायालय का आदेश निरस्त।

सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1966 – आदेश XVI नियम 10(1) प्रावधान आवश्यकता – अभिनिर्धारित : जब विशेष अनुमति याचिका निर्धारित सीमा अवधि से विलंबित दायर की जाती है और विलंब-निरस्तीकरण के आवेदन सहित होती है, तब न्यायालय को बिना उत्तरदाता को सूचना दिए विलंब को क्षमा नहीं करना चाहिए – परंतु जब न्यायालय यह मत बना ले कि विलंब क्षमा करने हेतु पर्याप्त कारण है, तब उत्तरदाता को यह दिखाने हेतु सूचना पत्र जारी करना कि विलंब क्यों न क्षमा किया जाए, मात्र औपचारिकता हो सकती है – उत्तरदाता को दिल्ली आने तथा अधिवक्ता नियुक्त करने में अनावश्यक खर्च से बचाने हेतु विलंब को एकतरफ़ा क्षमा कर दिया जाता है – तथापि, यदि उत्तरदाता को

सूचना पत्र जारी न किया जाए, तो सुनवाई के समय उसे यह अधिकार होगा कि वह दर्शाए कि विलंब क्षमा करने में न्यायालय उचित नहीं था और यदि अनुमति दी गई हो तो उसे वापस लिया जाए अथवा जारी सूचना पत्र को खारिज किया जाए।

उत्तरदाता संख्या 1 – राज्य न्यायिक सेवा में मुंसिफ ने सेवा से बर्खास्तगी को चुनौती देते हुए विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की और उसे सेवा में बहाल किया गया। तथापि, दो वर्ष बाद उसे सेवा से निलंबित कर विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई। व्यथित होकर उत्तरदाता संख्या 1 ने रिट याचिकाएँ दायर कीं जो खारिज कर दी गईं। तत्पश्चात उत्तरदाता संख्या 1 ने विशेष अनुमति याचिकाएँ दायर कीं। इनके लंबित रहने के दौरान उच्च न्यायालय ने एक अधिसूचना जारी कर उत्तरदाता संख्या 1 को पुनः सेवा से निलंबित कर दिया। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को उत्तरदाता संख्या 1 के विरुद्ध पारित निलंबन आदेश एवं प्रारंभ की गई विभागीय कार्यवाही को वापस लेने का निर्देश दिया। 12 अक्टूबर 1981 की अधिसूचना द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 को पुनः अपर मुंसिफ (न्यूनतम पद) पर पदस्थ किया गया, जिस पर वह प्रारंभ में नियुक्त हुआ था। बाद में 10 दिसंबर 1981 की दूसरी अधिसूचना द्वारा उसे स्थान 'डी' पर अपर मुंसिफ पदस्थापित किया गया। इसी बीच उत्तरदाता संख्या 1 ने अपने लंबित देयों के भुगतान तथा अपने लिए उपयुक्त श्रेणी का एक पद सुरक्षित रखने हेतु विभिन्न प्रतिवेदन किए, परंतु कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 दायर कर 10 दिसंबर 1981 की अधिसूचना को रद्द करने तथा अपने कनिष्ठों को 1970 से 1981 के मध्य दी गई पदोन्नति की तिथियों से स्वयं को सभी वेतन-वृद्धि एवं अन्य लाभों सहित पदोन्नति देने का निर्देश देने का अनुरोध किया । आरोपपत्र में संशोधन कर 19 अगस्त 1982 को उत्तरदाता संख्या 1 के विरुद्ध नई विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई। उत्तरदाता संख्या 1, 1 सितंबर 1983 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया। दायर याचिकाएँ निरर्थक हो गईं और वापस ले ली गईं। तत्पश्चात एक विशेष अनुमति याचिका में, इस न्यायालय ने राज्य सरकार को निर्देश दिया कि उसे सेवा-

निवृत्ति की तिथि से देय पेंशन बहाल कर, बकाया राशि का भुगतान करे, तथा भविष्य निधि, उपदान और अवकाश वेतन का भुगतान किया जाए, जैसा सेवा-निवृत्ति पर देय होता है। तथापि, उत्तरदाता संख्या 1 के मामले में पूर्व प्रभाव से सभी लाभों सहित पदोन्नति पर विचार करने का कोई निर्देश नहीं दिया गया। पेंशन संबंधी मामला अंतिम रूप से तय हो गया। इसके बाद उत्तरदाता संख्या 1 ने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 4862/1987 दायर कर अपने कनिष्ठों को दिए गए वैध दावों की मांग की। याचिका को यह निर्देश देते हुए निपटाया गया कि वह उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष को प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। उत्तरदाता संख्या 1 ने प्रतिवेदन दिए जिन्हें अस्वीकार कर दिया गया। तत्पश्चात उसने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538/1990 दायर की। खंडपीठ ने अपीलकर्ता – पटना उच्च न्यायालय को निर्देश दिया कि उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति प्रकरण एवं परिणामी लाभों पर विधि के अनुसार विचार किया जाए। अतः अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील दायर की।

अपील का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने —

अभिनिर्धारित किया : 1.1 यह तर्क कि उत्तरदाता संख्या 1 ने 10 नवम्बर 1990 को, अर्थात् सेवा-निवृत्ति के सात वर्ष बाद, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की, और इसलिए देरी तथा ढील के आधार पर याचिका खारिज की जानी चाहिए थी — स्वीकार नहीं किया जा सकता। अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में इस आधार पर कोई बहस की थी, ऐसा आरोप न तो उच्च न्यायालय के निर्णय में मिलता है, न ही विशेष अनुमति याचिका के ज्ञापन में इस बात की कोई शिकायत की गई है कि उच्च न्यायालय ने इस तर्क पर विचार नहीं किया। अतिरिक्त रूप से यह स्पष्ट है कि दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 4862/1987 में उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता संख्या 1 को निर्देश दिया था कि वह अपने कनिष्ठों को दिए गए लाभों के संबंध में प्रशासनिक पक्ष को प्रतिवेदन दे। उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा अंतिम प्रतिवेदन 23 जून 1990 को दिया गया, जिसे 17 सितम्बर 1990 को अस्वीकृत कर दिया गया। अतः देरी

और ढील का प्रश्न सेवा-निवृत्ति की तिथि से नहीं, बल्कि 17 सितम्बर 1990 को किए गए अस्वीकृति-पत्र से आंका जाना चाहिए।

इस प्रकार, उत्तरदाता संख्या 1 केवल इस आधार पर, कि उसने सेवा-निवृत्ति के बाद विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की, अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता। [कंडिका 12] [987-सी-जी]

1.2 दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538/1990 से स्पष्ट है कि उत्तरदाता संख्या 1 सिविल न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन) के पद पर, उसके बाद अपर जिला न्यायाधीश के पद पर तथा अंत में जिला न्यायाधीश के पद पर पदोन्नति का दावा कर रहा है, जबकि उसके कनिष्ठों को क्रमशः वर्ष 1971, 1974 और 1978 में ऐसे लाभ दिए गए थे। अभिलेख दर्शाते हैं कि उत्तरदाता संख्या 1 के 31 अगस्त 1983 को सेवा से सेवानिवृत्त होने तक वह अपर मुंसिफ के रूप में कार्य कर रहा था और कभी भी मुंसिफ के पद पर पदोन्नत/स्थायी रूप से पुष्टि नहीं किया गया। अतः जब तक वह मुंसिफ के पद पर पुष्टि नहीं हो जाता, उसके उच्चतर पदों पर पदोन्नति के दावे पर विचार नहीं किया जा सकता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538/1990 में किया गया पदोन्नति का दावा पुराना था और उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था। वर्ष 1971, 1974 और 1978 में उत्तरदाता के कनिष्ठों को पदोन्नति के लाभ दिए गए थे, परंतु उन्हें याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया। उनकी अनुपस्थिति में उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा किया गया दावा उच्च न्यायालय द्वारा जांचा नहीं जा सकता था। [कंडिका 12] [988-डी-एफ-जी-एच]

पी एस सदाशिवस्वामी बनाम तामिलनाडु राज्य (1975) 1 एससीसी 152 : 1975 (2) एससआर 356 – संदर्भित।

1.3 उत्तरदाता संख्या 1 का यह आग्रह कि विलंब क्षमादान के लिए दायर अंतरिम आवेदन संख्या 1/2009 पर बिना उसे सूचना पत्र दिए ही विलंब क्षमा कर दिया गया, जबकि सर्वोच्च न्यायालय नियमों के आदेश XVI के नियम 10(1) के प्रावधानानुसार उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए बिना विलंब क्षमादान नहीं किया जा सकता और इसलिए विशेष अनुमति

याचिका सीमाबद्ध होने के कारण खारिज की जानी चाहिए – स्वीकार नहीं किया जा सकता। कार्यालय रिपोर्ट, जिसे विशेष अनुमति याचिका के साथ इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, से ज्ञात होता है कि विशेष अनुमति याचिका दायर करने में आठ दिन का विलंब तथा पुनः दायर करने में नौ दिन का विलंब हुआ था। [कंडिका 14] [989-डी-एफ]

1.4 सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1966 के आदेश XVI के नियम 10(1) के प्रावधानों के अनुसार, जहाँ विशेष अनुमति याचिका निर्धारित अवधि के पश्चात दायर की गई हो और उसके साथ विलंब क्षमादान का आवेदन संलग्न हो, वहाँ बिना उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए विलंब क्षमा नहीं किया जाना चाहिए। तथापि, यह देखा गया है कि वर्ष 1966 में नियम बनने के बाद से लगातार यह प्रथा रही है कि यदि न्यायालय को यह प्रतीत हो जाए कि विलंब क्षमा करने हेतु पर्याप्त कारण मौजूद है और याचिकाकर्ता का मामला गुण-दोष के आधार पर मजबूत है, तो उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए बिना ही विलंब क्षमा कर दी जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब न्यायालय यह मत बना लेता है कि पर्याप्त कारण है, तब उत्तरदाता को यह दिखाने के लिए सूचना पत्र देना कि विलंब क्यों न क्षमा किया जाए, एक अनावश्यक औपचारिकता बन जाएगी, और यह भी सुनिश्चित करने के लिए कि उत्तरदाता को दूर-दराज़ से दिल्ली आकर अधिवक्ता नियुक्त कर अनावश्यक खर्च न उठाना पड़े, विलंब एक-पक्षीय क्षमा कर दिया जाता है। हालाँकि, नियमों 1966 के आदेश XVI के नियम 10(1) के प्रावधानों को देखते हुए, यह विवेकपूर्ण होगा कि विशेष अनुमति याचिका दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने से पूर्व उत्तरदाता को सूचना पत्र जारी किया जाए। फिर भी, यदि उत्तरदाता को सूचना पत्र जारी न किया गया हो, तब सुनवाई के चरण में उत्तरदाता को यह अधिकार उपलब्ध होगा कि वह यह इंगित कर सके कि न्यायालय विलंब क्षमा करने में उचित नहीं था और यदि अनुमति दी गई हो तो उसे निरस्त किया जाए या जारी सूचना पत्र को खारिज किया जाए। [कंडिका 18] [995-सी-जी]

मेसर्स राम लाल कपूर एण्ड सन्स (प्रा.) लि. बनाम राम नाथ व अन्य, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1060 1060 : 1963 सप्ली. सप्ली. एस.सी.आर. 242; *कमिश्नर ऑफ कस्टम्स बनाम रंगी इंटरनेशनल* (2003) 11 एस.सी.सी. 366 – संदर्भित

1.5 प्रारम्भ में, उत्तरदाता संख्या 1 ने यह तर्क देने का प्रयास किया कि 8 दिनों की नहीं बल्कि 7 महीनों की विलम्बता बिना स्पष्टीकरण के थी जैसा कि कार्यालय रिपोर्ट में उल्लिखित किया गया था, परंतु वह अपना यह तर्क सिद्ध नहीं कर सका। यह इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका कि न्यायालय के कार्यालय द्वारा 8 दिनों की विलम्बता की गणना त्रुटिपूर्ण थी। अपीलकर्ता–उच्च न्यायालय द्वारा विलम्ब क्षमा हेतु आवेदन में प्रस्तुत स्पष्टीकरण प्रामाणिक और स्वीकार्य है। विलम्ब क्षमा आवेदन में किए गए कथनों से यह प्रतीत नहीं होता कि अपीलकर्ता–उच्च न्यायालय इस मामले की कार्यवाही में लापरवाह या उदासीन रहा हो और न ही अभिलेख यह दर्शाते हैं कि उच्च न्यायालय ने इस वाद को त्याग दिया था अथवा आक्षेपित निर्णय को स्वीकार कर लिया था। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, जब विशेष अनुमति याचिका प्रारम्भिक सुनवाई हेतु प्रस्तुत थी, तब इस न्यायालय द्वारा विलम्ब को क्षमा किया जाना उचित था और उत्तरदाता को सूचना पत्र जारी किया जाना भी उचित था। अतः विशेष अनुमति याचिका दायर करने में हुई विलम्बता की क्षमादान से संबंधित उत्तरदाता के तर्क को अस्वीकार किया जाता है। [कंडिका 20] [996-जी-एच; 997-ए-सी]

1.6 पूर्व में उत्तरदाता संख्या 1 ने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 पटना उच्च न्यायालय में दायर की थी जिसमें पूर्वव्यापी तिथियों से पदोन्नति, विभिन्न श्रेणियों में उत्पन्न होने पर सभी दावे, लाभ एवं वेतनवृद्धियाँ, जैसा कि उसके कनिष्ठों को प्रदान किए गए थे, का दावा किया था। उसकी प्रार्थना यह थी कि उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक पक्ष में संशोधित अधिसूचना जारी करे जिसमें उसके कनिष्ठों की पदोन्नति की तिथियों से उसे भी पदोन्नति प्रदान की जाए और उसे जिला एवं सत्र

न्यायाधीश के रूप में तैनात किया जाए। उसकी एक अन्य प्रार्थना यह थी कि दिनांक 10 दिसम्बर 1981 की अधिसूचना, जिसके द्वारा उसे अपर मुंसिफ के रूप में पदस्थ किया गया था, को निरस्त किया जाए। उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका उच्च न्यायालय द्वारा निरर्थक होने के कारण खारिज कर दी गई। इससे व्यथित होकर उत्तरदाता संख्या 1 ने इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8923/1983 दायर की, जिसे वापस ले लिया गया। अतः दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 में पारित आदेश, जिसके विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका वापस ले ली गई, अंतिम हो गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि 24 फरवरी 1983 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 में पदोन्नति देने से इनकार किए जाने वाला आदेश तथा विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8923/1983 में पारित आदेश, पूर्व न्याय निर्णयण के रूप में प्रभावी होंगे। [कंडिका 21] [997-डी-एच; 998-ए]

1.7 पदोन्नति अधिकार का विषय नहीं है, और न ही मौलिक अधिकार है विशेषकर अधीनस्थ न्यायपालिका में पदोन्नति के संदर्भ में, जहाँ संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुसार उच्च न्यायालय का संपूर्ण नियंत्रण रहता है। उत्तरदाता संख्या 1 के सभी अधिकार और दावे उस समय अंतिम रूप से निश्चित हो गए जब विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8621/1985 में पारित आदेश को, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8923/1983 में पारित आदेश के साथ पढ़ा जाता है। यदि उत्तरदाता संख्या 1 को कोई अन्य दावा करना था, तो उसे उक्त विशेष अनुमति याचिकाओं के निस्तारण के समय करना चाहिए था। वास्तव में दोनों विशेष अनुमति याचिकाएँ खारिज की गईं अतः पेंशन इत्यादि के भुगतान की दिशा-निर्देशों को छोड़कर उसके सभी दावे अंतिम रूप से अस्वीकार हो गए। उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538/1990 में यह शिकायत नहीं की गई कि विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8621/1985 में दिए गए निर्देशों का पालन नहीं हुआ। न तो विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8923/1983 और न ही विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) सं. 8621/1985 के निस्तारण के समय उत्तरदाता संख्या 1 ने किसी अन्य राहत

का दावा किया और न ही भविष्य में पदोन्नति से संबंधित राहत माँगने की अनुमति प्राप्त की। अतः दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538/1990 में मांगी गई राहत न्यायालय द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती थी। [अनुच्छेद 22] [998-बी-एफ]

1.8. यह स्पष्ट है कि दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538 वर्ष 1990 दायर की गई थी उन्हीं राहतों के लिए जो दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924 वर्ष 1982 में माँगी गई थीं और अस्वीकार कर दी गई थीं, और इसलिए उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता था। आगे, विशेष अनुमति याचिका संख्या 8261 वर्ष 1985, जो उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 2059 वर्ष 1984 में उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर की गई थी, वह खारिज कर दी गई और केवल यही राहत दी गई कि राज्य को निर्देश दिया जाए कि उसे सेवा से सेवानिवृत्ति की तिथि से सेवा निवृत्ति के आधार पर देय पेंशन बहाल की जाए तथा उसके बकाया का भुगतान किया जाए और आगे निर्देश दिया गया कि उसे भविष्य निधि, उपदान तथा अवकाश वेतन, जो उसे सेवानिवृत्ति पर देय हो सकता है, का भुगतान किया जाए। कभी यह निर्देश नहीं दिया गया कि उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक पक्ष पर उत्तरदाता संख्या 1 के कथित पदोन्नतियों के दावे पर विचार करे। [कंडिका 23] [998-जी-एच; 999-ए-बी]

1.9. उच्च न्यायालय के खंडपीठ ने अपीलकर्ता को यह निर्देश देने में विधि-त्रुटि की कि वह उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति के मामले पर तथा विधि के अनुसार परिणामी लाभों पर विचार करे। अतः, आक्षेपित निर्णय रद्द किया जाता है। [कंडिका 24] [999-सी-डी]

वाद विधि संदर्भ :

1975 (2) एससीआर 356	संदर्भित	कंडिका 13

1963 सप्ली.एससीआर 242 संदर्भित कंडिका 17,18

(2003) 11 एससीसी 366 संदर्भित कंडिका 19

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील सं. 7630/2011

दिनांक 27.6.2008 को पटना उच्च न्यायालय द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 6538 वर्ष 1990 में पारित निर्णय एवं आदेश से।

पी.एच. पारेख, अजय कुमार झा, पल्लवी श्रीवास्तव, पारेख एवं कंपनी — अपीलकर्ता की ओर से।

गोपाल सिंह, रूद्रेश्वर सिंह, गौरव शर्मा, अंजनी अय्यागारी, सुषमा सूरी — उत्तरदाता की ओर से उत्तरदाता -स्वयं उपस्थित।

न्यायालय का निर्णय

जे.एम. पंचाल, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया। 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील, विशेष अनुमति प्रदान कर, दिनांक 27 जून 2008 को पटना उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 में पारित निर्णय के विरुद्ध की गई है, जिसके द्वारा पटना उच्च न्यायालय को उसके प्रशासनिक पक्ष पर निर्देश दिया गया है कि वह उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति के मामले तथा उसके परिणामी लाभों को विधि के अनुसार विचार करे।

3. उत्तरदाता संख्या 1 को 13 जनवरी 1955 को बिहार न्यायिक सेवा में हाजीपुर में मुंसिफ के पद पर नियुक्त किया गया। 9 मई 1970 को पटना उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को उत्तरदाता संख्या 1 को सेवा से बर्खास्त करने की अनुशंसा की। उच्च न्यायालय की अनुशंसा के आधार पर राज्य सरकार ने 15 जनवरी 1972 की अधिसूचना द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 को सेवा से बर्खास्त कर दिया। तत्पश्चात् उत्तरदाता संख्या 1 ने अपने

सेवा-समापन को चुनौती देते हुए अनुच्छेद 32 के अंतर्गत इस न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संख्या 121/1972 दाखिल की। उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दायर याचिका को 23 फरवरी 1972 के निर्णय द्वारा इस आधार पर स्वीकार किया गया कि सेवा-समापन कलंकात्मक था तथा बिना किसी जांच के आदेशित किया गया था। उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 की याचिका में दिया गया निर्णय **(1973) 4 एससीसी 166** में प्रतिवेदित है। उक्त निर्णय के दृष्टिगत उत्तरदाता संख्या 1 को सेवा में पुनःस्थापित किया गया। किन्तु, 12 अप्रैल 1974 को उसे सेवा से निलंबित कर दिया गया तथा उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गई। निलंबन आदेश को उसने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 820/1974 दायर कर चुनौती दी तथा विभागीय कार्यवाही की शुरुआत को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 593/1975 दायर कर चुनौती दी। दोनों रिट याचिकाएँ वर्ष 1977 में उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गईं। इसके उपरांत, उसने निलंबन आदेश के विरुद्ध दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका की खारिजगी को चुनौती देते हुए विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 4344/1977 तथा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 593/1975 में विभागीय कार्यवाही निरस्त करने से इंकार के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 4345/1977 दायर की। उपरोक्त दोनों विशेष अनुमति याचिकाओं की लंबितावस्था में उच्च न्यायालय द्वारा 30 जनवरी 1978 की एक अन्य अधिसूचना से उसे पुनः सेवा से निलंबित कर दिया गया। 1 मार्च 1978 को इस न्यायालय ने दोनों विशेष अनुमति याचिका को स्वीकृत कर लिया, जिन्हें क्रमशः दीवानी अपील संख्या 525/1978 और 526/1978 में परिवर्तित किया गया। इस न्यायालय ने 24.09.1981 के निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश दिया कि उत्तरदाता संख्या 1 के विरुद्ध 30 जनवरी 1978 का निलंबन आदेश तथा आरंभ की गई विभागीय कार्यवाही वापस ले, तथा आरोपपत्र में संशोधन कर निलंबन की स्थिति पर पुनर्विचार करे। 12 अक्टूबर 1981 की अधिसूचना द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 को सासाराम में अपर मुंसिफ के रूप में तैनात किया गया, जो न्यायपालिका में निम्नतम पद

होता है तथा जिस पद पर उसने प्रारम्भ में 13 जनवरी 1955 को कार्य ग्रहण किया था। 10 दिसम्बर 1981 की एक अन्य अधिसूचना द्वारा उसे दरभंगा में अपर मुंसिफ के रूप में पदस्थापित किया गया। इस बीच उसने अपने देयकों की भुगतान तथा उसके लिए उपयुक्त पद सुरक्षित रखने हेतु विभिन्न प्रतिवेदन किए, परन्तु उन्हें कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। अतः उसने 6 मई 1982 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 दायर की, जिसमें 10 दिसम्बर 1981 की अधिसूचना उसे दरभंगा में अपर मुंसिफ के रूप में पदस्थापित करने वाली को निरस्त करने और पटना उच्च न्यायालय को उसके प्रशासनिक पक्ष पर निर्देश देने की प्रार्थना की कि 1970 से 1981 तक की अवधि में जिन तिथियों पर उसके नामित कनिष्ठों को प्रोन्नत किया गया था, उन तिथियों से उसे प्रोन्नत किया जाए, सभी वेतनवृद्धि तथा अन्य लाभ प्रदान किए जाएँ। उसने यह भी प्रार्थना की कि एक संशोधित अधिसूचना जारी की जाए जिसमें उसे विभिन्न पदों पर देय तिथियों से दी जाने वाली सभी प्रोन्नतियाँ शामिल हों तथा उसे जिला न्यायाधीश के पद पर पदस्थ किया जाए। आरोपपत्र में आवश्यक संशोधन के बाद 19 अगस्त 1982 को उसके विरुद्ध नई विभागीय कार्यवाही आरंभ की गई। उत्तरदाता संख्या 1 ने जांच अधिकारी के समक्ष कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया। जांच के उपरांत जांच अधिकारी ने 10 दिसम्बर 1982 की अपनी रिपोर्ट में आरोपों को सिद्ध माना। तत्पश्चात् 12 जनवरी 1983 की सूचना पत्र तथा जांच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति उसे प्रेषित की गई और उससे पूछा गया कि क्यों न उसे सेवा से हटाया जाए। उत्तरदाता संख्या 1 ने उक्त कारण बताओ सूचना पत्र का कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया।

4. जब दिनांक 24 फरवरी 1983 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 1924/1982 न्यायालय में सुनवाई हेतु आया, तब विद्वान अपर महाधिवक्ता ने न्यायालय को सूचित किया कि विभागीय कार्यवाही समाप्त हो चुकी है तथा उसे सेवा से हटाए जाने के संबंध में कारण बताने हेतु द्वितीय कारण बताओ सूचना पत्र दिया गया है। इस पर न्यायालय

ने यह मत व्यक्त किया कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिका निष्फल हो गई है और उक्त अनुसार 24 फरवरी 1983 के आदेश द्वारा उसे खारिज कर दिया।

12 जनवरी 1983 की कारण बताओ सूचना पत्र प्राप्त होने के बाद, उत्तरदाता संख्या 1 ने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 2959/1984 दायर की, जिसमें निम्नलिखित को निरस्त करने की प्रार्थना की गई: (i) दिनांक 19 अगस्त 1982 की वह अधिसूचना, जो उच्च न्यायालय द्वारा उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने हेतु जारी की गई थी (ii) 10 दिसम्बर 1982 की जांच रिपोर्ट, जो जिला न्यायाधीश, दरभंगा द्वारा अग्रेषित की गई (iii) 12 जनवरी 1983 की वह नोटिस, जिसमें उसे सेवा से हटाए जाने के संबंध में कारण बताने हेतु कहा गया था

5. दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 2059 वर्ष 1984 में पटना उच्च न्यायालय की ओर से उपस्थित विद्वान अपर महाधिवक्ता ने न्यायालय को 26 फरवरी 1985 को यह सूचित किया कि उत्तरदाता संख्या 1 की सेवा से 01 सितंबर 1983 को सेवानिवृत्ति हो चुकी है और उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात उच्च न्यायालय ने उन पर लगाए जाने वाले दण्ड के प्रश्न पर विचार किया तथा 11 जून 1984 को जारी ज्ञापन द्वारा उनसे यह कारण बताने को कहा गया कि उच्च न्यायालय राज्य सरकार को उनकी पेंशन स्थायी रूप से रोकने की अनुशंसा क्यों न करे, और उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा कोई कारण प्रस्तुत न किए जाने पर उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को उनकी पेंशन स्थायी रूप से रोकने की अनुशंसा की है, किन्तु इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा अभी अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है। उक्त दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 2059 वर्ष 1984 की सुनवाई कर रही खंडपीठ का मत था कि दायर की गई विनिर्दिष्ट आदेश याचिका निरर्थक हो चुकी है और यह भी राय व्यक्त की गई कि उत्तरदाता संख्या 1 को पेंशन के विषय में राज्य सरकार द्वारा अंतिम निर्णय लिए जाने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। अतएव, 26 फरवरी 1985 के निर्णय द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को निरर्थक मानकर खारिज कर दिया गया तथा उत्तरदाता संख्या 1 को यह

स्वतंत्रता प्रदान की गई कि पेंशन मामले के अंतिम रूप ले लेने के बाद वे अपनी आर्थिक दावों की प्रार्थना पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं।

6. उत्तरदाता संख्या 1 की यह शिकायत थी कि जिन विभिन्न तिथियों पर उसके कनिष्ठ अधिकारियों को पदोन्नति दी गई थी, उन तिथियों से उसे पदोन्नति देने के उसके दावे पर उच्च न्यायालय ने विचार नहीं किया और न ही उसे कोई लाभ दिए गए। ऐसी परिस्थितियों में, उत्तरदाता संख्या 1 ने इस न्यायालय का द्वार खटखटाते हुए विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923 वर्ष 1983 दायर की, जो 24 फ़रवरी 1983 के उस आदेश के विरुद्ध थी जिसमें दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1924 वर्ष 1982 को निष्फल हो जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह विशेष अनुमति याचिका दिनांक 30 अगस्त 1983 को सुनवाई हेतु सूचीबद्ध हुई। इस न्यायालय के संज्ञान में यह बात लाई गई कि उत्तरदाता संख्या 1 को दूसरा कारण बताओ सूचना पत्र जारी किया गया है तथा वह 31 अगस्त 1983 को सेवानिवृत्त होने वाला है, अर्थात जिस दिन विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923 वर्ष 1983 पर सुनवाई हुई, उसके अगले ही दिन। उत्तरदाता संख्या 1 ने न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया कि विशेष अनुमति याचिका निष्फल हो चुकी है और उसे वापस लेने की अनुमति मांगी। उत्तरदाता संख्या 1 के इस निवेदन के आधार पर 30 अगस्त 1983 को विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) को वापस लेने के रूप में निस्तारित कर दिया गया।

इस प्रकार, इसमें तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि 24 फ़रवरी 1983 को पटना उच्च न्यायालय के खंड पीठ द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1924 वर्ष 1982 में कथित तिथियों से पदोन्नति तथा मौद्रिक लाभ देने से इंकार करने वाला आदेश अन्तिम हो गया, क्योंकि उसके विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923 वर्ष 1983 उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा 30 अगस्त 1983 को बिना किसी शर्त वापस ले ली गई।

7. पुनः उत्तरदाता संख्या 1 ने विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8621 वर्ष 1985 उस आदेश 26 फ़रवरी 1985 के विरुद्ध दायर की, जिसके द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 2059 वर्ष 1984 को निष्फल होने के कारण खारिज कर दिया गया था। उक्त विशेष अनुमति याचिका की लंबित अवस्था में 11 अगस्त 1985 का संकल्प संख्या 10383 पारित किया गया, जिसके द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 को देय पेंशन स्थायी रूप से जब्त कर ली गई। उक्त संकल्प को 25 नवम्बर 1986 को विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8621 वर्ष 1985 के अभिलेख में प्रस्तुत किया गया। इस न्यायालय ने 25 नवम्बर 1986 को उक्त विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) में निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

> "विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है, परन्तु हम बिहार राज्य को निर्देश देते हैं कि वे याचिकाकर्ता को देय पेंशन उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि से सेवानिवृत्त माने जाने के आधार पर, देरी के सभी बकाया सहित, 6 सप्ताह के भीतर पुनः बहाल करें। भविष्य निधि, उपदान तथा अवकाश वेतन भी, जो उसे सेवानिवृत्ति पर देय है, उसे भुगतान किया जाएगा।"

8. उपर्युक्त उद्धृत आदेश से यह स्पष्ट होता है कि विशेष अनुमति याचिका (विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) जो कि 26 फ़रवरी 1985 को उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 2059 वर्ष 1984 में पारित आदेश के विरुद्ध दायर की गई थी, खारिज कर दी गई थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने बार (अधिवक्ता संघ) पर यह कहा कि उत्तरदाता संख्या 1 न्यायिक अधिकारी थे और इसलिए, जब यह इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया कि उनकी पेंशन स्थायी रूप से जब्त कर ली गई है, तब इस न्यायालय ने उत्तरदाता संख्या 1 के प्रति करुणा, चिंता, सहानुभूति और दया दिखाते हुए बिहार राज्य को यह निर्देश दिया था कि वे सेवा निवृत्ति की तिथि से सेवा निवृत्त माने जाने के आधार पर देय पेंशन तथा उसकी सभी बकाया राशि का भुगतान करें, और साथ ही, भविष्य निधि उपदान तथा अवकाश वेतन भी, जो सेवा निवृत्ति पर देय हो, उन्हें भुगतान

किया जाए। तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि अपीलकर्ता को उत्तरदाता संख्या 1 के मामले पर सभी लाभों सहित पूर्व प्रभाव से विचार करने का कोई निर्देश नहीं दिया गया था।

9. उत्तरदाता संख्या 1 के अनुसार उनकी पेंशन का मामला 14 जुलाई 1987 को अंतिम रूप से निपटा दिया गया। पेंशन मामला अंतिम हो जाने के बाद, उन्होंने अपने कनिष्ठों को दिए गए वैधानिक दावों के लिए उच्च न्यायालय में दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 4862 वर्ष 1987 दायर की। उक्त याचिका 09 नवम्बर 1989 को इस निर्देश के साथ निपटाई गई कि उत्तरदाता संख्या 1 अपने कनिष्ठों को दिए गए वैध दावों के लिए उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत करें। उपर्युक्त निर्देश के अनुपालन में, उत्तरदाता संख्या 1 ने 12 फ़रवरी 1990 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। उक्त अभ्यावेदन पर पटना उच्च न्यायालय की स्थायी समिति द्वारा विचार किया गया और 30 मार्च 1990 को अस्वीकार कर दिया गया।

10. उत्तरदाता संख्या 1 ने अपने कनिष्ठों को प्रदान किए गए वैध दावों को देने हेतु अपनी प्रार्थना को दोहराते हुए 30 अप्रैल 1990 को पुनः अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। उक्त अभ्यावेदन को उच्च न्यायालय ने अपने प्रशासनिक पक्ष से 25 मई 1990 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया। उत्तरदाता संख्या 1 ने इसी आशय से 23 जून 1990 को तृतीय अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसे उच्च न्यायालय ने 17 सितम्बर 1990 के संप्रेषण द्वारा अस्वीकार कर दिया। इसके उपरांत उत्तरदाता संख्या 1 ने पटना उच्च न्यायालय में दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538 वर्ष 1990 दायर की। उक्त याचिका की सुनवाई कर रही खंड पीठ ने अपने 27 जून 2008 के निर्णय द्वारा अपीलकर्ता उच्च न्यायालय को निर्देश दिया कि उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति के मामले तथा परिणामी लाभों को विधि के अनुसार विचारित किया जाए। इसी निर्णय के कारण यह वर्तमान अपील उत्पन्न हुई है।

11. इस न्यायालय ने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा उत्तरदाता संख्या 1 जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए की दलीलें सुनी हैं। न्यायालय ने अपील का भाग बनने वाले अभिलेखों पर भी विचार किया है।

12. अपीलकर्ता की ओर से यह प्रतिवेदन किया गया कि उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा वादपत्र 10 नवम्बर 1990 को दायर किया गया था, अर्थात् सेवानिवृत्त होने के 7 वर्ष पश्चात्, अतः वादपत्र को विलंब तथा ढिलाई के आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था स्वीकार नहीं किया जा सकता। आक्षेपित निर्णय से कहीं यह स्पष्ट नहीं होता कि ऐसा कोई मुद्दा अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय में उठाया गया था। न ही विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) के ज्ञापन में यह शिकायत की गई है कि विलंब और ढिलाई से सम्बन्धित बिन्दु उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क किया गया था परन्तु उस पर विचार नहीं किया गया। आगे, तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि 09 नवम्बर 1989 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं. 4862 /1987 में उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता संख्या 1 को अपने प्रशासनिक पक्ष से अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था, जिससे कि उसके कनिष्ठों को जो लाभ प्रदान किए गए थे परन्तु उसे नहीं दिए गए थे, उन लाभों का दावा कर सके। उक्त निर्देश के अनुपालन में उत्तरदाता संख्या 1 ने अंतिम अभ्यावेदन 23 जून 1990 को प्रस्तुत किया, जिसे उच्च न्यायालय ने 17 सितम्बर 1990 के संप्रेषण द्वारा अस्वीकार कर दिया। अतः विलंब और ढिलाई का प्रश्न 17 सितम्बर 1990 की संप्रेषणा से देखा जाएगा, जिसके द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा किए गए दावे को अस्वीकार किया गया था, न कि सेवानिवृत्ति की तिथि से। इस प्रकार, उत्तरदाता संख्या 1 को सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद वादपत्र दायर करने हेतु विलंब और ढिलाई के आधार पर अपात्र नहीं ठहराया जा सकता।

हालाँकि, इसमें कोई संदेह नहीं कि उत्तरदाता संख्या 1 पदोन्नति हेतु विभिन्न संवर्गों में, अपर मुंसिफ के पद से तथा अपने कनिष्ठों को वर्षों 1971, 1974 और 1978 में दिए गए तदनुसार पदोन्नति लाभों का दावा कर रहे हैं। दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं.

6538/1990, जिससे यह अपील उत्पन्न हुई है, में याचिकाकर्ता ने वादपत्र के अनुच्छेद 20 में निम्नलिखित राहत का दावा किया था:

"यह न्यायालय से विनम्रतापूर्वक प्रार्थना है कि इस विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को स्वीकार किया जाए तथा उत्तरदाता संख्या 1 और 2 को यह निर्देश दिया जाए कि जिस अवधि के दौरान याचिकाकर्ता को अवैध रूप से सेवा से बाहर रखा गया, उस अवधि में उसके कनिष्ठों को दिए गए सभी सेवा संबंधी दावों को याचिकाकर्ता को भी प्रदान किया जाए तथा याचिकाकर्ता के कैरियर को नष्ट कर देने के कारण उपयुक्त मुआवज़ा दिया जाए, जैसा कि इस विनिर्दिष्ट आदेश याचिका के अनुच्छेद 1 और 4 में पूर्ण रूप से उल्लेखित है, तथा ऐसा अन्य आदेश/आदेश पारित किए जाएँ जो न्यायालय उचित और उपयुक्त समझे"।

यदि याचिका में किए गए निवेदनों को देखा जाए, तो तुरंत स्पष्ट हो जाता है कि याचिकाकर्ता यह दावा कर रहा है कि उसे 1971, 1974 और 1978 में उसके कनिष्ठों को जिन पदोन्नतियों का लाभ दिया गया था, उन तिथियों से क्रमशः सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ श्रेणी, उसके बाद अपर जिला न्यायाधीश, और अंततः जिला न्यायाधीश के पद पर पदोन्नति दी जाए।

अभिलेख से यह परिलक्षित होता है कि उत्तरदाता संख्या 1 जब 31 अगस्त 1983 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ, तब तक वह अतिरिक्त मुंसिफ़ के रूप में कार्य कर रहा था और उसे कभी भी मुंसिफ़ कैडर में पुष्टि नहीं मिली थी। अतः, जब तक उसे मुंसिफ़ के पद पर पुष्टि नहीं मिल जाती, उसके उच्चतर पद पर पदोन्नति के दावे पर विचार नहीं किया जा सकता था। केवल इसी आधार पर उसके द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका खारिज किए जाने योग्य थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 में किया गया पदोन्नति का दावा अत्यंत पुराना था और उस पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना उचित नहीं था। इसके अतिरिक्त, उत्तरदाता संख्या 1 के वे कनिष्ठ, जिन्हें 1971,

1974 और 1978 में पदोन्नति का लाभ दिया गया था, उन्हें याचिका में उत्तरदाता के रूप में शामिल ही नहीं किया गया। उनके अभाव में, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा प्रस्तुत दावा उच्च न्यायालय द्वारा परीक्षण योग्य नहीं था। अतः, चुनौती दिया गया निर्णय इस आधार पर निरस्त किया जाना आवश्यक है कि उत्तरदाता संख्या 1 ने अत्यधिक विलंब के पश्चात विभिन्न कैडरों में पदोन्नति का अप्रासंगिक दावा प्रस्तुत किया और वह भी बिना अपने कनिष्ठों को उत्तरदाता बनाये।

13. पी. एस. सदाशिवस्वामी बनाम तामिलनाडु राज्य (1975) 1 एससीसी 152 में, इस न्यायालय ने यह दृढ़ विधिक प्रस्ताव स्थापित किया है कि यदि किसी व्यक्ति को इस बात से क्षोभ हो कि उसके कनिष्ठ को उसके ऊपर पदोन्नति दे दी गई है, तो उसे ऐसे पदोन्नति आदेश को चुनौती देने के लिये कम से कम 6 माह के भीतर अथवा अधिकतम एक वर्ष के भीतर न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाना चाहिए और यदि पीड़ित व्यक्ति शीघ्रतापूर्वक न्यायालय में उपस्थित न होकर विलंब करता है तथा अप्रासंगिक दावा करता है और स्थापित स्थितियों को अस्थिर करने का प्रयास करता है, तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी असाधारण अधिकार-क्षमता का प्रयोग करने से इन्कार कर सकता है। इसलिए दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 जिसमें पदोन्नति का अप्रासंगिक दावा किया गया था, उसे खारिज किया जाना आवश्यक था।

14. उत्तरदाता संख्या **1** की यह दलील कि अंतरिम आवेदन संख्या 1/2009 विशेष अनुमति याचिका विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) दायर करने में विलंब की क्षमा के लिये दायर की गई थी तथा उसके बिना सूचना पत्र दिये ही विलंब को क्षमा कर दिया गया, जबकि सर्वोच्च न्यायालय नियमावली के आदेश XVI के नियम 10 की उप-नियम (1) के प्रावधान में अनिवार्यतः कहा गया है कि उत्तरदाता को सूचना पत्र दिये बिना विलंब की क्षमा नहीं की जाएगी अतः विशेष अनुमति याचिका को अवधि-सीमा से बाधित मानकर खारिज कर दिया जाए यह तर्क असंगत है। कार्यालय की रिपोर्ट दिनांक 24.12.2008 में यह दर्शाया

गया कि विशेष अनुमति याचिका दायर करने में 8 दिनों का विलंब तथा पुनः दाखिल करने में 9 दिनों का विलंब हुआ। विशेष अनुमति याचिका को 09.02.2009 को प्रारंभिक सुनवाई हेतु सूचीबद्ध किया गया तथा प्रार्थी के अधिवक्ता को सुनने के बाद निम्न आदेश पारित किया गया:–

"विलंब क्षम्य किया जाता है।

सूचना पत्र जारी किया जाए।

आक्षेपित आदेश पर आगामी आदेश तक अंतरिम स्थगन रहेगा।"

15. उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा उठाए गए इस कथन से निपटने के लिए यह आवश्यक होगा कि सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1950 में निहित योजना, जिसे बाद में संशोधित किया गया, तथा सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1966 में निहित योजना तथा इस संबंध में कुछ प्रासंगिक निर्णयों का उल्लेख किया जाए।

16. भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अपने नियम-निर्माणाधिकार का प्रयोग करते हुए तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1950 बनाए। 1950 के नियमों में आदेश *XIII* विशेष अनुमति द्वारा दायर अपीलों से संबंधित था। नियम 1, जो कि इस अपील में उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा उठाए गए मुद्दे का निर्णय करने हेतु प्रासंगिक है, इस प्रकार था:

"1. विशेष अनुमति से अपील के लिए याचिका, उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र दिए जाने से इन्कार की तिथि से 60 दिन के भीतर या अपील की जाने वाली निर्णय की तिथि से 90 दिन के भीतर, जो भी अवधि अधिक हो, न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी:

बशर्ते कि—

(i) 90 दिन की अवधि की गणना में अपील किए जाने वाले निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगा समय छोड दिया जाएगा;

(ii) जहाँ परिसीमा की अवधि साठ दिन अभिकथित की गई है, प्रमाण-पत्र के अस्वीकार किए जाने की तिथि से, अस्वीकार की तिथि के पश्चात निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगा समय (ऐसे मामलों में जहाँ उक्त अस्वीकार की तिथि से पूर्व निर्णय की कोई प्रमाणित प्रति प्राप्त नहीं की गई थी) साठ दिनों की अवधि की गणना में अपवर्जित किया जाएगा;;

(iii) जहाँ उच्च न्यायालय में प्रमाणपत्र हेतु आवेदन समयावधि समाप्त होने पर अस्वीकृत होता है, वहाँ समयावधि की गणना अपील किए जाने वाले निर्णय की तिथि से होगी, न कि उक्त आवेदन के अस्वीकृत होने की तिथि से;

(iv) जहाँ उस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने हेतु न्यायालय की अनुमति के लिए आवेदन किया गया है और अस्वीकृत कर दिया गया है, आवेदन किए जाने से लेकर उसके अस्वीकार किए जाने तक की अवधि इस नियम के अधीन अवधि की गणना में अपवर्जित की जाएगी;

(v) न्यायालय उपयुक्त कारण होने पर समयावधि विस्तारित कर सकता है, यदि इस प्रयोजन हेतु आवेदन किया गया हो।"

सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1950 भारत के राजपत्र असाधारण दिनांक 28 जनवरी 1950 में प्रकाशित किए गए तथा बाद में निम्न अधिसूचनाओं द्वारा संशोधित हुए 25 अप्रैल 1950, 5 जुलाई 1950, 19 अगस्त 1950, 18 जून 1951, 6 मई 1952, 16 जनवरी 1954, 10 जुलाई 1954, 12 अप्रैल 1955, 19 मार्च 1956, 14 जुलाई 1956, 11 जुलाई 1957, 22 नवंबर 1957, 9 जनवरी 1958 और 8 अप्रैल 1959। संशोधन के पश्चात् आदेश XIII नियम 1 इस प्रकार है:

"1. सीमा अधिनियम, 1963 (अधिनियम संख्या 36/ 1963) की धाराओं 4, 5, 12 एवं 14 के उपबंधों के अधीन विशेष अनुमति से अपील की याचिका जहाँ उच्च न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति हेतु प्रमाणपत्र देने से इन्कार किया गया है, उस

इन्कार के आदेश की तिथि से 60 दिन के भीतर, और अन्य सभी मामलों में अपील किए जाने वालेनिर्णय/आदेश की तिथि से 90 दिन के भीतर, न्यायालय में दाखिल की जाएगी।"

जब तक सरवोच्च न्यायालय नियमों 1966, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्मित नहीं किए गए थे, तब तक इस न्यायालय की यह प्रथा थी कि विशेष अनुमति याचिका दाखिल करने में हुई विलंब को, उत्तरदाता को नोटिस जारी किए बिना, क्षम्य किया जाता था।

17. इस चरण पर, इस न्यायालय के संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय *मेसर्स राम लाल कपूर एण्ड संस (प्रा.) लि. बनाम राम नाथ एवं अन्य* एआईआर 1963 एससी 1060 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। उक्त मामले में प्रथम उत्तरदाता राम नाथ दिल्ली स्थित एक भवन के स्वामी थे, जिसमें अपीलकर्ता कंपनी भी एक किरायेदार थी।

अपीलकर्ता ने *दिल्ली और अजमेर किराया नियंत्रण अधिनियम, 1947* की धारा *7*ए के अंतर्गत अपने कब्जे वाले हिस्से के *उचित किराये* के निर्धारण हेतु दिल्ली के *किराया नियंत्रक* के समक्ष आवेदन किया। किराया नियंत्रक, दिल्ली ने पूरे भवन का उचित किराया रू. 565/- प्रति माह तथा अपीलकर्ता द्वारा देय उचित किराया रू. 146/- प्रति माह निर्धारित किया। उत्तरदाता मकान-मालिक ने उक्त आदेश के विरुद्ध *जिला न्यायाधीश, दिल्ली* के समक्ष अपील दायर की, किन्तु अपील खारिज हो गई। अतः उन्होंने *अनुच्छेद 227* के अंतर्गत पंजाब उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर किराया नियंत्रक तथा जिला न्यायाधीश के निर्णय के प्रत्येक निष्कर्ष की वैधता एवं उचितता को चुनौती दी। यह याचिका उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई हेतु आई। इसी दौरान उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ पूर्व में यह घोषित कर चुकी थी कि धारा *7*ए असंवैधानिक एवं शून्य है। इस निर्णय का अनुसरण करते हुए, एकल न्यायाधीश ने प्रथम उत्तरदाता राम नाथ की याचिका स्वीकार कर किराया नियंत्रक के आदेश को अधिकार क्षेत्र के अभाव में निरस्त कर दिया,

तथा उन अन्य मुद्दों पर विचार नहीं किया जो धारा को वैध मानने पर उत्पन्न होते। इस आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता ने लेटर्स पेटेंट के अंतर्गत खंड पीठ के समक्ष अपील दायर की।

इसी बीच, धारा 7ए को असंवैधानिक घोषित करने वाले खंड पीठ के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की गई। अपील की सुनवाई की तैयारी के दौरान, अपीलकर्ता मेसर्स राम लाल कपूर एण्ड संस (प्रा.) लि. ने इस न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त कर अपील प्रस्तुत की, यद्यपि उच्च न्यायालय में की गई अपील लंबित थी। इसके पश्चात अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में लंबित लेटर्स पेटेंट अपील वापस ले ली। सर्वोच्च् न्यायालय ने खंड पीठ के निर्णय के विरुद्ध दायर अपील की सुनवाई कर 2 अगस्त 1961 को निर्णय दिया और उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटते हुए धारा 7ए को वैध ठहराया।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि जिस एकमात्र आधार पर एकल न्यायाधीश ने उत्तरदाता की पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की थी, वह अब अस्तित्व में नहीं था, और फलस्वरूप अपीलकर्ता अपनी अपील स्वीकृत करवाने का अधिकारी था। चूँकि एकल न्यायाधीश ने किराया नियंत्रक के आदेश के विरुद्ध उत्तरदाता द्वारा उठाए गए अन्य आपत्तियों पर विचार नहीं किया था, अतः अपील को उच्च न्यायालय में पुनः विचार हेतु विधि के अनुसार प्रेषित करना आवश्यक था।

हालाँकि, अपील की सुनवाई पर एक प्रारम्भिक आपत्ति उत्तरदाता मकान-मालिक के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई। उनका यह निवेदन था कि इस न्यायालय द्वारा जो विशेष अनुमति एकतरफ़ा रूप से प्रदान की गई है, उसे वापस ले लिया जाना चाहिए क्योंकि वह अनुचित रूप से प्राप्त की गई थी। जिस एकल-न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध यह अनुमति प्रदान की गई थी, वह दिनांक 05 जनवरी 1955 का था तथा इस न्यायालय में अनुमति का आवेदन 05 जनवरी 1959 को किया गया था, अर्थात 4 वर्ष पश्चात्। यह स्पष्ट था कि यह एक ऐसा आवेदन था जो इस न्यायालय के नियमों द्वारा निर्धारित परिसीमा

अवधि से बहुत अधिक विलम्ब से प्रस्तुत किया गया था। उत्तरदाता पक्ष के अधिवक्ता का आग्रह था कि इतने लम्बे विलम्ब को क्षमा करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं थे और, अतः, इस न्यायालय को यह अनुमति वापस ले लेनी चाहिए। संविधान पीठ इस अनुरोध को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थी। उत्तरदाता के अधिवक्ता ने संविधान पीठ का ध्यान उन कुछ निर्णयों की ओर भी आकर्षित किया जिनमें एकतरफ़ा दी गई अनुमति अपील की सुनवाई के चरण में, उत्तरदाता द्वारा आपत्ति उठाए जाने पर, वापस ले ली गई थी। किन्तु संविधान पीठ का मत था कि वर्तमान अपील के तथ्य उन उद्धृत निर्णयों से किसी प्रकार की समानता नहीं रखते। पाँच-न्यायाधीशों की संविधान पीठ की यह राय थी कि इस मामले में विशेष अनुमति का प्रदान किया जाना केवल कार्यवाही को संक्षिप्त करने के लिए था और यह इस कारण स्वीकार किया गया था कि उन अन्य मामलों में, जिनमें यह मत लिया गया था कि धारा *7* ए असंवैधानिक है, इस न्यायालय में अपीलें सुनवाई हेतु तैयार हो रही थीं और अपीलकर्ता द्वारा उन अपीलों में हस्तक्षेप किया जाना लाभप्रद था। फिर भी, संविधान पीठ ने अपने निर्णय के अनुच्छेद 9 में निम्न महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं:

> "9. फिर भी, हम यह जोड़ना आवश्यक समझते हैं कि अत्यन्त विरले मामलों को छोड़कर, यदि न कहा जाए कि लगभग प्रत्येक स्थिति में, यह उचित होगा कि यह न्यायालय एक स्थायी नियम के रूप में स्वीकार करे कि विशेष अनुमति हेतु आवेदन में हुए विलम्ब को एकतरफ़ा रूप से क्षमा न किया जाए, बल्कि ऐसे मामलों में अनुमति प्रदान करने से पूर्व उत्तरदाता को सूचना पत्र देकर उसे अनुमति प्रदान किए जाने का विरोध करने का अवसर दिया जाए। यह प्रक्रिया न केवल न्यायसंगत होगी, बल्कि इस बात की तुलना में अधिक उपयुक्त होगी कि वर्षों पश्चात्, अनुमति प्रदान किए जाने के बाद, यह प्रश्न उठे कि विलम्ब को अनुचित रूप से क्षमा किया गया था और अनुमति रद्द की जाए ऐसी स्थिति में इस न्यायालय को अपीलकर्ता के साथ होने वाले अन्याय के कारण असहजता का अनुभव होता है, क्योंकि यदि अनुमति उस

समय अस्वीकृत कर दी गई होती तो वह अन्य उपाय कर सकता था। हम सुझाव देते हैं कि इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु न्यायालय के नियमों में उपयुक्त संशोधन किया जाए।"

18. वर्ष 1950 में बनाए गए नियमों को वर्तमान नियमों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय नियम, 1966 कहा जाता है। ये नियम दिनांक 15 जनवरी 1966 से प्रभावी हुए। राम लाल एंड सन्स प्राइवेट लिमिटेड प्रकरण में संविधान पीठ द्वारा की गई महत्वपूर्ण अनुशंसाओं पर विचार किया गया और आदेश XVI के नियम 10 के उपनियम (1) के उपबंध को अधिनियमित किया गया, जिसका पाठ इस प्रकार है:-

"10 (1) जब तक कि आदेश XVIII के नियम 2 के अनुसार कैविएट अन्य पक्षकारों द्वारा, जो अधोलिखित न्यायालय में उपस्थित हुए थे, दाख़िल न की गई हो, विशेष अनुमति प्रदान करने हेतु दायर याचिकाएँ एकतरफ़ा सुनवाई के लिए प्रस्तुत की जाएँगी, परन्तु न्यायालय यदि उपयुक्त समझे तो उत्तरदाता को सूचना पत्र जारी करने तथा याचिका की सुनवाई स्थगित करने का निर्देश दे सकता है :

बशर्ते कि जहाँ विशेष अनुमति हेतु याचिका निर्धारित सीमावधि के पश्चात दायर की गई हो और उसके साथ विलंब क्षमादान के लिए आवेदन संलग्न हो, वहाँ न्यायालय उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए बिना विलंब क्षमा नहीं करेगा ।"

स्वाभाविक रूप से, उपबंध यह अपेक्षा करता है कि जब विशेष अनुमति हेतु याचिका निर्धारित सीमावधि के पश्चात दायर की गई हो और उसके साथ विलंब-क्षमा हेतु आवेदन संलग्न हो, तो न्यायालय उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए बिना विलंब क्षमा नहीं करेगा। तथापि, यह देखा गया है कि 1966 के नियम बनने के बाद भी इस न्यायालय की निरन्तर प्रथा यह रही है कि यदि न्यायालय यह राय बनाए कि विलंब क्षमादान हेतु पर्याप्त कारण विद्यमान है और याचिकाकर्ता का मामला गुण-दोष के आधार पर उचित है, तब विलंब को एकतरफ़ा ही क्षमादान कर दिया जाता है, उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए बिना। इसमें कोई

संदेह नहीं कि न्यायालय एक बार यह राय बना ले कि विलंब क्षमादान हेतु पर्याप्त कारण है, तब उत्तरदाता को यह दिखाने हेतु सूचना पत्र जारी करना कि विलंब क्यों न क्षमा किया जाए केवल एक औपचारिकता हो जाती है; और इस उद्देश्य से कि उत्तरदाता को दूरस्थ स्थानों से दिल्ली आने तथा अधिवक्ता करने पर व्यर्थ खर्च न करना पड़े, विलंब एकतरफ़ा ही क्षमा कर दिया जाता है। परंतु, नियमों 1966 के आदेश XVI के नियम 10(1) के उपबंध की आवश्यकता को देखते हुए, विशेष अनुमति याचिका में हुए विलंब को क्षमा करने से पहले उत्तरदाता को सूचना पत्र देना उपयुक्त होगा। तथापि, यदि उत्तरदाता को सूचना पत्र न दिया गया हो, तब सुनवाई के चरण पर उसे यह अधिकार उपलब्ध रहेगा कि वह यह इंगित कर सके कि न्यायालय विलंब क्षमा करने में न्यायोचित नहीं था और यदि अनुमति प्रदान की गई हो तो उसे निरस्त कर दिया जाए अथवा जारी सूचना पत्र को खारिज किया जाए।

19. आयुक्त कस्ट्मस *बनाम रंगी अंतर्राष्ट्रीय* (2003) 11 एससीसी 366 में, जिस विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) से अपील उत्पन्न हुई थी, वह 246 दिनों के विलंब से दायर की गई थी। प्रारम्भिक सुनवाई में यह पाया गया कि विलंब-क्षमा के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय नियमों की उपेक्षा करते हुए, इस न्यायालय ने 12.7.2000 को बिना उत्तरदाता को सूचना पत्र दिए एकतरफ़ा विलंब क्षमा कर दी थी और अनुमति प्रदान कर दी थी। 2.4.2002 को जब उत्तरदाता उपस्थित हुआ, तब प्राथमिक आपत्ति उठाई गई कि विलंब क्षमादान सर्वोच्च न्यायालय नियमों के विरुद्ध था। अतः न्यायालय ने अभिलेख देखे और पाया कि विलंब क्षमा आवेदन में उपयुक्त विवरण नहीं दिए गए थे। इसलिए न्यायालय ने अपीलकर्ता को निर्देश दिया कि वह विलंब क्षमा आवेदन के समर्थन में अतिरिक्त शपथपत्र प्रस्तुत करे। तदनुसार अतिरिक्त शपथपत्र प्रस्तुत किया गया। इसके उत्तर में उत्तरदाता ने प्रतिशपथपत्र दाखिल कर इंगित किया कि अतिरिक्त शपथपत्र में भी विलंब का समुचित स्पष्टीकरण नहीं है तथा अपीलकर्ता सतर्क भी नहीं रहा। दोनों पक्षों की दलीलें सुनकर और मूल तथा अतिरिक्त शपथपत्रों में दिए कारणों पर विचार कर, न्यायालय ने माना कि

अपीलकर्ता विलंब का संतोषजनक स्पष्टीकरण देने में असफल रहा है। फलतः उत्तरदाता की दलील स्वीकार कर, न्यायालय ने 12.7.2000 को प्रदान की गई अनुमति निरस्त कर दी और परिणामस्वरूप विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) को सीमावधि समाप्त होने के कारण खारिज कर दिया।

20. उपर्युक्त उल्लिखित निर्णय में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए मार्ग के दृष्टिगत, इस न्यायालय ने अपीलकर्ता तथा उत्तरदाता को यह सुनिश्चित करने के लिए सुना कि आठ दिनों की देरी की क्षमा के लिए पर्याप्त कारण प्रस्तुत किया गया है या नहीं। प्रारंभ में उत्तरदाता संख्या 1 ने यह तर्क देने का प्रयास किया कि कार्यालय प्रतिवेदन में उल्लिखित 8 दिनों के बजाय 7 महीनों का अव्याख्यायित विलंब हुआ है, परंतु वह अपना यह तर्क सिद्ध नहीं कर सका। यह इस न्यायालय को नहीं दिखाया जा सका कि न्यायालय के कार्यालय द्वारा की गई 8 दिनों के विलंब की गणना त्रुटिपूर्ण थी। विलंब-क्षमा आवेदन में अपीलकर्ता उच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण युक्तिसंगत एवं स्वीकार्य है। विलंब-क्षमा आवेदन में किए गए विवरणों से यह कहीं परिलक्षित नहीं होता कि अपीलकर्ता उच्च न्यायालय इस मामले की पैरवी में या तो लापरवाह था अथवा उदासीन, और न ही अभिलेख से यह इंगित होता है कि उच्च न्यायालय ने वाद-हित त्याग दिया हो तथा आक्षेपित निर्णय को स्वीकार कर लिया हो। प्रासंगिक तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि जब विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) प्रारंभिक सुनवाई हेतु प्रस्तुत की गई थी, तब विलंब का क्षमादान करना तथा उत्तरदाता को सूचना पत्र जारी करना न्यायोचित था। अतः उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) दायर करने में हुए विलंब के क्षमादान संबंधी जो आपत्ति उठाई गई है, उसमें कोई सार नहीं है और इसलिए उक्त आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

21. विषय के गुण-दोष पर आते हुए, यह न्यायालय पाता है कि उत्तरदाता संख्या 1 ने पूर्व में दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1924/1982 पटना उच्च न्यायालय में दायर

की थी, जिसमें उसने विभिन्न संवर्गों में, उनकी देय तिथियों से, पदोन्नतियाँ तथा उनके साथ मिलने वाले सभी दावे, लाभ और वेतनवृद्धि इस प्रकार मांगे थे, जैसे उसके कनिष्ठों को प्रदान किए गए थे। उसका यह भी प्रार्थना-पत्र था कि उच्च न्यायालय अपनी प्रशासनिक पक्ष से एक संशोधित अधिसूचना जारी करे, जिसमें वे सभी पदोन्नतियाँ सम्मिलित हों, जिनके लिए वह पात्र था, और उसे जिला न्यायाधीश के पद पर पदस्थापित किया जाए। उसकी एक अन्य प्रार्थना यह थी कि दिनांक 10 दिसम्बर, 1981 की वह अधिसूचना रद्द की जाए, जिसके द्वारा उसे दरभंगा में अपर मुंसिफ के रूप में पदस्थापित किया गया था। उक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को पटना उच्च न्यायालय ने 24 फरवरी, 1983 के आदेश द्वारा निष्प्रभावी मानकर खारिज कर दिया था। उस आदेश से आहत होकर, उत्तरदाता संख्या 1 ने इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923/1983 दायर की, जिसे उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा 30 अगस्त, 1983 को वापस ले लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया। इस प्रकार 24 फरवरी, 1983 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1924/1982 में पारित आदेश पूर्णतः अंतिम हो गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि उक्त आदेश, तथा उस पर आधारित विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923 of 1983 में दिए गए आदेश के संयुक्त प्रभाव से पूर्व निर्णित लागू हो चुका था।

22. यह विधि द्वारा सुव्यवस्थित है कि पदोन्नति कोई अधिकार नहीं है, और तो और मौलिक अधिकार भी नहीं है, विशेषकर जहाँ अधीनस्थ न्यायपालिका में पदोन्नति का विषय, संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुसार, उच्च न्यायालय के पूर्ण नियंत्रणाधीन है। उत्तरदाता संख्या 1 के सभी अधिकार एवं दावे उस समय पूर्णतः निश्चित एवं स्थिर हो गए हो गए थे जब इस न्यायालय ने दिनांक 25 नवम्बर, 1986 को विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8621/1985 में आदेश पारित किया था तथा साथ ही दिनांक 30 अगस्त, 1983 को विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923/1983 में पारित आदेश के साथ। यदि उत्तरदाता संख्या 1 को कोई अन्य दावा करना था तो उसे इन विशेष अनुमति

याचिकाओं के निपटान के समय इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए था। वस्तुतः दोनों ही विशेष अनुमति याचिकाएँ निरस्त की गई थीं, अतः उसका प्रत्येक दावा अंतिम रूप से अस्वीकार हो चुका था, सिवाय उन निर्देशों के जिनमें उसकी पेंशन इत्यादि भुगतान का कहा गया था (आदेश दिनांक 25 नवम्बर, 1986, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8621/1985) उत्तरदाता संख्या 1 ने दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 में यह कभी नहीं कहा कि 25 नवम्बर, 1986 के निर्देशों का पालन नहीं किया गया। न तो विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8923/1983 के निपटान के समय और न ही विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8621/1985 के निपटान के समय उत्तरदाता संख्या 1 ने कोई और राहत चाही, न ही भविष्य में पदोन्नति से सम्बन्धित राहत माँगने की अनुमति प्राप्त की। अतः दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 में मांगी गई राहत न्यायालय द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती थी।

23. यह स्पष्ट है कि दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6538/1990 उसी राहत के लिए दायर की गई थी, जो दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 1924/1982 में मांगी गई थी और अस्वीकार हो चुकी थी, अतः उक्त रिट-याचिका पर विचार ही नहीं किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 2059/1984 में पटना उच्च न्यायालय के 26 फरवरी, 1985 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 8261/ 1985 को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसमें इस न्यायालय द्वारा केवल इतना निर्देश दिया गया था कि बिहार राज्य उत्तरदाता संख्या 1 की पेंशन, जो उन्हें सेवा निवृत्ति की तिथि से देय है, बकाया पेंशन सहित बहाल करे तथा भविष्य निधि, उपदान और अवकाश वेतन, जो सेवा निवृत्ति पर उन्हें देय हों, का भुगतान किया जाए। इस न्यायालय ने कभी यह निर्देश नहीं दिया था कि पटना उच्च न्यायालय अपने प्रशासनिक पक्ष से उत्तरदाता संख्या 1 के अनुमान्य पदोन्नति के दावे पर विचार करे।

24. उपर्युक्त विचार–विमर्श के आलोक में, इस न्यायालय का मत है कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा मूल उत्तरदाता संख्या 2 अर्थात वर्तमान अपीलकर्ता को उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति के मामले तथा उसके परिणामी लाभों पर विधि अनुसार विचार करने का निर्देश देकर विधि में त्रुटि की है। अतः आक्षेपित निर्णय निरस्तीकरण हेतु पात्र है।

उपर्युक्त कारणों से यह अपील स्वीकार की जाती है। दिनांक 27 जून, 2008 को पटना उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 6578/1990 में पारित निर्णय, जिसमें वर्तमान अपीलकर्ता को उत्तरदाता संख्या 1 के पदोन्नति तथा परिणामी लाभों के मामले पर विचार करने का निर्देश दिया गया था, यहाँ निरस्त किया जाता है। तदनुसार अपील निस्तारित की जाती है।

अपील निस्तारित किया गया ।

एन.जे.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।